गंगा घाटी में लौह तकनीकि के दो स्पष्ट चरण दिखाई देते हैं; 1200-600 B.C. के मध्य ऊपरी तथा मध्य गंगा घाटी में तथा दूसरा 600-B.C. के बाद मध्य एवं निम्न मध्य गंगा घाटी में।

600 B.C. से पहले लौह तकनीकि के उपयोग का प्रमाण हमें मुख्य रूप से पश्चिमी U.P. (ऊपरी गंगा घाटी) व गंगा-यमुना दोआब में दूसरे क्षेत्रों से मिला है जबकि इसके पूर्व मध्य व निम्न मध्य गंगा घाटी में लौह तकनीकि का प्रयोग नहीं हो रहा था। (अपवाद - पाण्डुराजारढिबी, W.B. से 600 B.C. के पहले लौह तकनीकि का प्रमाण)
वस्तुतः इस समय जो लौह तकनीकि का प्रयोग हो रहा था, वह ढलवा लोहा की तकनीकि थी। जिनका प्रयोग केवल हथियारों के निर्माण में हो रहा था। दूसरी तरफ 600 B.C. के बाद दूसरे चरण में हमें जिस लौहे का प्रमाण मिलता है उसमें न केवल परिष्कृत अयस्कों का प्रयोग, बल्कि उसके निर्माण में कार्बनीकरण की प्रविधि का प्रयोग हुआ था जिससे लोहे को स्पात में बदलना संभव हो सका था। चूंकि यह परिष्कृत लोहा

बहुत मजबुत होता था तथा इसपे जंग भी कम लगता था, अतः इससे निर्मित उपकरणों का उपयोग कृषि कर्म हेतु किया जा सकता था। यही कारण है कि हमें पूर्वी भाग से लोहे की अपेक्षाकृत रूप से उन्नत तकनीकि से निर्मित उपकरणों के प्रमाण मिलते हैं। पुरातात्विक + साहित्यिक दोनों साक्ष्यों से इस बात की पुष्टि होती है। 900 B.C. में रचीत पालि ग्रन्थ सुत्त निपात में लोहे को कड़ा करने (इस्पात बनाने) एवं इससे कृषि सम्बन्धी उपकरण बनाने की जानकारी मिलती है। कुल मिलाकर अगर लौह तकनीकि के भौगोलिक परीपेक्ष का विश्लेषण करें तो तीन बातें स्पष्ट होती है;

- पश्चिमी उत्तर प्रदेश और गुजरात तक के प्रदेशों में (अश्मक) उत्पन्न महाजनपद लोहे की परीष्कृत तकनीकों का प्रयोग नहीं कर रहे थे जबकि मध्य एवं निम्न मध्य गंगा घाटी में परिष्कृत लोहे का प्रयोग हो रहा था।
- पश्चिम भाग में लौह तकनीकों का प्रयोग केवल हथियारों के लिये किया जा रहा था जबकि पूर्वी भाग में कृषि उपकरण और युद्धास्त्रों दोनों के निर्माण में हो रहा था।

जारी.....